प्रकाशित: 16 फरवरी 2019 को ईचर्चा.इन पर प्रकाशित-

नेहरू अड़ंगा नहीं लगाते तो आज भारत होता सुरक्षा परिषद का स्थायी सदस्य

अविनाश त्रिपाठी

आजादी के 70 सालों में भारत के खातें में कई उपलब्धियां हैं लेकिन कुछ ऐसी कमियां भी जो विश्वशक्ति होने का दावा करते भारत को आइना दिखाती हैं। इन कमियों में एक सबसे बड़ी कमी संयुक्त राष्ट्र संघ के सुरक्षा परिषद का स्थायी सदस्य ना होना। भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्र है, विश्व की दूसरी सबसे बड़ी आबादी है, अपनी सकरात्मक और अहिंसात्मक क्षवि के लिए जाना जाता है साथ ही संयुक्त राष्ट्र संघ से जुड़ने वाले देशों में से एक है इसके बावजूद संयुक्त राष्ट्र संघ के सुरक्षा परिषद का सदस्य नहीं और कारण कोई और नहीं भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पं. जवाहर लाल नेहरू हैं।

26 जनवरी 1950 को भारत गणतांत्रिक भारत बना और इससे कुछ माह पहले 21 सितंबर 1949 को चीन जनवादी चीन बना। इसे पहले दोनों देश राजनीतिक उथल-पुथल से गुजरे। चीन में करीब 3 दशक तक गृहयुद्ध जैसी स्थिति रही जिसमें माओ के नेतृत्व में एक दल की तानाशाही वाले कम्युनिस्टों की जीत हुई और च्यांग काई शेक के नेतृत्व वाले कथित राष्ट्रवादियों को धकेल कर ताईवान तक सीमित कर दिया गया।

ऐसे ही भारत में लीगी मुसलमानों ने हिन्दुओं को साथ रहने से इंकार करते हुए अलग इस्लामिक देश का मांग कर दी। 10 लाखों लोगों के

नरसंहार के बाद एक नया देश पाकिस्तान बनकर दुनिया के नक्शे में सामने आया। भारत जिसने यहूदी देश के तौर पर इजरायल को मान्यता देने में चार दशक लगा दिए इस्लामिक देश के तौर पर पाकिस्तान और कम्युनिस्ट देश के तौर पर चीन को मान्यता देने वाला प्रथम देश (पहले गैर कम्युनिस्ट देश) बना।

उस समय यूएन की सुरक्षा परिषद की चार सीटों पर अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस और रूस थे पांचवी सीट खाली थी। पश्चिम चाहता था ये सीट चीन को ना मिले वरना दो कम्युनिस्ट देश सुरक्षा परिषद में आ जाएंगे तो उस समय इस मामले को उलझाए रखने के लिए ताईवान (राष्ट्रवादी चीन) को चीन के तौर पर मान्यता दे देकर सुरक्षा परिषद का स्थाई सदस्य बना दिया गया। लेकिन ये ज्यादा दिन चलने वाला नहीं था तो अमेरिका ने भारत को सुरक्षा परिषद की स्थाई सीट लेने का प्रस्ताव दिया लेकिन पं नेहरू ने साफ मना कर दिया उन्होंने कहा पहला हक चीन का बनता है हमें नहीं चाहिए।

अमेरिका द्वारा भारत को दिया गया प्रस्ताव

1950 के दशक के कई बार ऐसे मौके आए जब अमेरिका भारत के सामने चीन की जगह सुरक्ष परिषद में शामिल होने का आग्रह करता दिखा। 1950 की शुरूआत में कोरिया युद्ध चीन के उतर जाने के बाद अमेरिका चीन को लेकर आशंकित था वो किसी भी तरह से चीन की बढ़ती ताकत को रोकना चाहता था इसलिए उसके लिए जरूरी था कि वो दूसरा लोकतांत्रिक देश के तौर पर भारत को बढ़ावा दे।

विजय लक्ष्मी का पत्र

सत्याग्रह पर प्रकाशित एक एक लेख के मुताबिक़ उस समय अमेरिका में भारत की राजदूत विजयलक्ष्मी पंडित जो जवाहर लाल नेहरू की

बहन भी थी उन्होंने अपने भाई को पत्र लिखा जिसमें उन्होंने कहा अमेरिका के विदेश मंत्रालय में चल रही एक बात तुम्हें भी मालूम होनी चाहिये। वह है, सुरक्षा परिषद की स्थायी सदस्यता वाली सीट पर से (ताइवान के राष्ट्रवादी) चीन को हटा कर उस पर भारत को बिठाना।इस प्रश्न के बारे में तुम्हारे उत्तर की रिपोर्ट मैंने अभी-अभी रॉयटर्स (समाचार एजेंसी) में देखी है.पिछले सप्ताह मैंने (जॉन फ़ॉस्टर) डलेस और (फ़िलिप) जेसप से बात की थी। दोनों ने यह सवाल उठाया और डलेस कुछ अधिक ही व्यग्र लगे कि इस दिशा में कुछ किया जाना चाहिये। पिछली रात वॉशिंगटन के एक प्रभावशाली कॉलम-लेखक मार्क़िस चाइल्ड्स से मैंने सुना कि डलेस ने विदेश मंत्रालय की ओर से उनसे इस नीति के पक्ष में जनमत बनाने के लिए कहा है। मैंने हम लोगों का उन्हें रुख बताया और सलाह दी कि वे इस मामले में धीमी गति से चलें, क्योंकि भारत में इसका गर्मजोशी के साथ स्वागत नहीं किया जायेगा।

'**भारत के प्रधानमंत्री नेहरू का जवाब** उक्त वेबसाईट के लेख के अनुसार अपने उत्तर में जवाहरलाल नेहरू ने लिखा, 'तुमने लिखा है कि (अमेरिकी) विदेश मंत्रालय, सुरक्षा परिषद की स्थायी सदस्यता वाली सीट पर से चीन को हटा कर भारत को उस पर बिठाने का प्रयास कर रहा है। जहां तक हमारा प्रश्न है, हम इसका अनुमोदन नहीं करेंगे. हमारी दृष्टि से यह एक बुरी बात होगी. चीन का साफ़-साफ़ अपमान होगा और चीन तथा हमारे बीच एक तरह का बिगाड़ भी होगा। मैं समझता हूं कि (अमेरिकी) विदेश मंत्रालय इसे पसंद तो नहीं करेगा, किंतु इस रास्ते पर हम नहीं चलना चाहते। हम संयुक्त राष्ट्र में और सुरक्षा परिषद में चीन की सदस्यता पर बल देते रहेंगे।

रूस द्वारा भारत के पक्ष में समर्थन

1953 में स्टालिन के मौत के बाद माओ अपने आप को सबसे सीनियर वैश्विक कम्युनिस्ट नेता मानने लगे जिससे चीन और रूस के संबंध खराब होते गए और 1950 के दशक के अंत तक दोनों देशों के बीच में युद्ध तक छिड़ गया। चीन से खराब होते संबंधों के बीच रूस ने भारत को सुरक्षा परिषद की स्थाई सीट ऑफर की ताकि चीन उस पर ना बैठ सके लेकिन पं. नेहरू ने कई बार ने इस ऑफर मना दिया।

तब के सोवियत प्रधानमंत्री निकोलाई बुल्गानिन ने कई मौके पर भारत के प्रतिनिधित्व को महत्व देते हुए कहा था कि भारत यदि चाहे तो उसे जगह देने लिए सुरक्षा परिषद में सीटों की संख्या पांच से बढ़ा कर छह भी की जा सकती है, लेकिन नेहरू अपनी उसी हठ पर जमे रहे कि नेहरू ने बुल्गानिन को भी यही जवाब दिया कि जब तक कम्युनिस्ट चीन को उसकी सीट नहीं मिल जाती, तब तक भारत को भी सुरक्षा परिषद में अपने लिए कोई स्थायी सीट नहीं चाहिए।

यहां तक की रूस ने भारत के लिए छठी सीट बनाने तक की बात की लेकिन नेहरू ने कहा पहले चीन का मसला हल होना चाहिए फिर हम सोचेंगे। इस तरह गोवा या दिल्ली जितना बड़ा देश ताईवान 1971 तक सुरक्षा परिषद का स्थाई सदस्य बना रहा और थक कर अंत में 1971 में चीन को सुरक्षा परिषद की स्थाई सदस्यता दे दी गई।

आज इस बात के करीब छह दशकों के बाद वर्तमान स्थिति में इसका आंकलन करे तो हम देखते हैं चीन का अपने हर पड़ोसी देश के साथ सीमा विवाद है। हर देश के साथ चीन अक्रामक नीति को अपनाए हुए है और सुरक्षा परिषद की स्थाई सीट उसकी इस ताकत को दो गुना कर देती है। भारत करीब छह दशक से इस सीट के लिए संघर्ष कर रहा है। हमें वीटों का अधिकार नहीं मिला, हम विश्व शक्ति नहीं बन पाए, हिन्दी विश्व भाषा नहीं बन पाई, कश्मीर मामले का हल नहीं हो पाया, ऐसा

नहीं हो पाया क्योंकि पं. नेहरू को चीन में दोस्त नज़र आता था वो भी ऐसा जिसके लिए अपने थाली की रोटी दे दिए जाए।

भारत आज कम से कम छह दशकों से सुरक्षा परिषद का स्थायी सदस्य होता. हिंदी संयुक्त राष्ट्र की एक आधिकारिक भाषा होती। भारत और हिंदी को विश्व में वैसा ही सम्मान मिल रहा होता जैसा आज विश्व में चीन की और चीनी भाषा को मिल रहा है। हमें हर मौके पर वीटो लगाने के लिए रूस का मुंह ना तकना पड़ता लेकिन नेहरू की मूर्खतापूर्ण सोच के चलते ये संभव नहीं हो सका। 1950 के दशक जैसा सुनहरा मौका भारत के लिए और हिंदी अब शायद ही कभी दुबारा आए। जिस चीन के लिए नेहरू सुरक्षा परिषद को त्याग रहे थे आज वो चीन हर अंतर्राट्रीय मंच पर भारत के लिए स्टैंड लेने में कभी कोई कमी नहीं बरतता।